Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 1 | JANUARY 2019

वैदिक सभ्यता में प्राकृतिक संसाधनों की भौगोलिक स्थिति

डॉ. श्याम लाल [1]

[1] सह–आचार्य, चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या, महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

ABSTRACT

KEYWORDS:

विश्व में सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक वाङ्मय 'वेद' को ही माना गया है, विद् धातु से निष्पन्न वेद शब्द भारतीय परम्परा के अनुसार ज्ञान का वाचक है। वेद ज्ञान का भण्डार कहे गये हैं। आचार्य विष्णुमित्र ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि – **''विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः''।**[1]

अर्थात् धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष–पुरुषार्थ, जिसके द्वारा जाना जाये या प्राप्त किया जाये वह वेद है।

वैदिक सभ्यता व संस्कृति में लोक जीवन व कला के साथ–साथ प्राकृतिक एवं भौगोलिक स्थिति का उल्लेख मिलता है कालान्तर में भौगोलिक प्रदेशों के नामों में परिवर्तन होने के कारण प्राकृतिक जलस्रोतों के नामों में भी परिवर्तन कहीं–कहीं देखने को मिलता है, परन्तु वैदिक सामाजिक जीवन में प्राकृतिक जल संसाधनों का बहुतायत में सप्रमाण उल्लेख मिलता है, जिसमें मुख्यतः नदियाँ, समुद्र व हिमपातों का वर्णन प्राप्य है।

प्राचीन समय में आर्यों ने अपने देश में अपनी सभ्यता का विकास व विस्तार किया था, उसे जानने का स्रोत वैदिक साहित्य ही है। यद्यपि प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण भी तत्कालीन नदियों, समुद्रों व पर्वतों आदि की स्थिति में भी बदलाव हुआ है। उदाहरणतः एक नदी जहां उस समय बहती थी, उसका प्रवाह मूल स्थान से हटकर सुदूर चला गया है। अतः वर्तमान में उस नदी की स्थिति में बदलाव हो चुका है। ऐसे ही भू–स्खलन के कारण पर्वतों की स्थिति में बदलाव देखने को मिल सकता है। तथापि विद्वज्जनों ने यथासम्भव दुरूह कार्य करते हुए तत्कालीन प्राकृतिक संसाधनों की भौगोलिक स्थिति का वर्तमान स्थिति से तादात्म्य स्थापित करने का महनीय कार्य किया है; किन्तु अक्षरशः तत्कालीन स्थिति का वर्तमान स्थिति में अनुमान लगाना कठिन कार्य है। आंशिक परिवर्तनों के साथ साक्ष्यों के आधार पर तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामंजस्य स्थापित कर उल्लेखनीय कार्य विद्वानों ने किया है। अनुमान के आधार पर संहिताओं तथा ब्राह्मणग्रन्थों में उपलब्ध प्राकृतिक स्रोत नदियों, पर्वतों, समुद्रों, वनों, क्षेत्रों का उल्लेख इस प्रकार द्रष्ट्व्य है –

1. भूखण्ड या द्वीप –

अथर्ववेद में भूमि के 3, 6 और 9 भागों का उल्लेख किया गया है। किसी भाष्यकार ने इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। वर्तमान भौगोलिक दृष्टि से इनकी अनुमान के आधार पर व्याख्या की जा सकती है। अथर्ववेद के अनुसार 'तिस्त्रः पृथिवीः' अर्थात पृथिवी के तीन भूखण्ड माने जा सकते हैं।[2] 1. यूरेशिया (यूरोप और एशिया) 2. अफ्रीका 3. अमेरिका (उत्तरी और दक्षिणी)

अथर्ववेद में ही अन्यत्र कहा गया है– 'षड् उर्व्यः' अर्थात् पृथ्वी के 6 खण्ड हैं।[3] 1. उत्तरी अमेरिका 2. दक्षिणी अमेरिका 3. अफ्रीका 4. यूरोप 5. एशिया 6. ऑस्ट्रलिया।

अथर्ववेद का ही यह कथन भी ध्यातव्य है कि पृथिवी के 6 खण्ड हैं और इनमें से एक अधिक बड़ा है। उपरोक्त 6 भूखण्डों में यूरोप और एशिया का मिला हुआ भूखण्ड 'यूरेशिया' बड़ा है।[4]

भारतीय परम्परा के अनुसार पृथिवी पर 7 बड़े द्वीप हैं। पतंजलि ने महाभाष्य (आह्निक–1) में 'सप्तद्वीपा वसुमति' अर्थात् पृथिवी पर सात द्वीप हैं यह लिखा है। अग्निपुराण (108 श्लोक 1 से 3) में इन सात द्वीपों के नामों का उल्लेख किया गया है– जम्बू द्वीप 2. प्लक्ष 3. महान् शाल्मलि 4. कुश 5. क्रौंच 6. शाक 7. पुष्कर द्वीप। भारतवर्ष जम्बूद्वीप का एक भाग है।

2. पर्वत –

ऋग्वेद में सामान्यतः पर्वतों का उल्लेख अनेक ऋचाओं में किया गया है।

1. **हिमवन्त** – ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओं में हिमवन्त का विशेष उल्लेख प्राप्य है।[5] यह पर्वत जिस प्रकार वर्तमान में भारत की उत्तरी सीमा निर्धारित करता है और देश की रक्षा करता है उसी प्रकार वैदिक काल में भी सप्तसिंधु प्रदेश की उत्तरी सीमा निर्धारिता करता था। यह पर्वत ऊँचा होने के कारण हिमाच्छादित रहता था। यह सभी नदियों का उद्गम स्थल था। इसमें हिमालय की पर्वत श्रेणियों का उल्लेख है। कुष्ठ (कूठ) औषधि हिमालय पर होती थी।[6] प्रार्थना की गयी है कि हिमालय से निकलने वाली नदियों का जल सुखद हो।[7]
2. **त्रिककूद्** – यह पर्वतों में श्रेष्ठ माना जाता था।[8] इस पर्वत पर अंजन (सुरमा) होता था।[9] यह सुलेमान पर्वत मालूम होता है, जहां वर्तमान में सुरमा होता है। कीथ ने इसे वर्तमान त्रिकोट माना है।
3. **मूजवत्** – ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता आदि में मूजवत् पर्वत का वर्णन द्रष्टव्य है। ऋग्वेद के 10.34.1 में सोम को मूजवत् पर्वत से उत्पन्न होने के कारण 'मौजवत' कहा गया है। यह हिन्दूकुश पर्वत की एक शाखा है। अथर्ववेद में मूजव् शब्द वहां के रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[10] यास्क ने मूजवत् को पर्वत का नाम माना है।[11]
4. **महामेरू** – तैत्तिरीय आरण्यक (1.7) में महामेरू का उल्लेख मिलता है। इसके बारे में बताया गया है कि कश्यप नामक सूर्य उसे कभी नहीं छोड़ता। यह 'उत्तरी ध्रुव' की पर्वतमाला के लिए है।
5. **शर्यणावत्** – शर्यणावत् नामक समुद्र जो सकल कश्मीर को घेरे हुए था उसके चारों तरफ स्थित पर्वत को शर्यणावत् कहा जाता था।
6. **सुषोम** – सुषोम पर्वत का उल्लेख ऋग्वेद के 8.7.29 मे किया गया है। इसके बारे में कहा जाता है कि यहां से 'सुषोमा' नामक नदी का उद्गम होने के कारण इसे 'सुषोम' नाम से जाना जाता है। सुषोम का तादात्म्य मूरी के दक्षिण तथा झेलम घाटी के पश्चिम की पहाड़ियों के साथ किया जा सकता है। क्योंकि सुषोमा नदी मूरी को पहाड़ियों से ही निकलती है।
7. **आर्जीक** – ऋग्वेद के 8.7.29 व 9.113.2 में आर्जीक पर्वत का वर्णन किया गया है। इस पर्वत से 'आर्जीकीया' नामक नदी निकलती है। इसका तदात्म्य मूरी के उत्तर में स्थित पर्वतामालाओं से किया जा सकता है।
8. **क्रौंच आदि पर्वत** – तैत्तिरीय आरण्यक (1.31) में क्रौंच मैनाक और सुदर्शन पर्वतों का भी उल्लेख मिलता है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में उत्तर पर्वत और दक्षिण पर्वत का उल्लेख है। दक्षिण पर्वत से विन्ध्य पर्वत का तादात्म्य माना जा सकता है।

2. समुद्र –

वैदिक आर्य जिन समुद्रों को जानते थ या जिन समुद्रों का उल्लेख वैदिक ऋषिगण मन्त्रों में करते हैं उनके नामों का उल्लेख तो स्पष्ट रूप से नहीं किया गया परन्तु कुछ विशेष सांकेतिक नामोल्लेख होने के कारण तत्कालीन सामुद्रिक स्थिति का संज्ञान मिलता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में दो, तीन और चार समुद्रों का वर्णन है।

दो समुद्र – ऋग्वेद व अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में दो समुद्रों का नामोल्लेख है। 'उभौ समुद्रौ.' आदि से पूर्व और पश्चिम समुद्रों का उल्लेख है।[12] पूर्व समुद्र से आज बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम समुद्र से अरब सागर का तादात्म्य किया जा सकता है।

तीन समुद्र – अथर्ववेद में तीन समुद्रों का उल्लेख किया गया है।[13]

उपरोक्त दो समुद्रों के अलावा तीसरा समुद्र उत्तर की तरफ था। जो आज जिसका तादात्म्य भूमध्य सागर के अवशेष कालासागर, कैस्पियन सी (काश्यप समुद्र) और अराल सागर से किया जा सकता है।

चार समुद्र – ऋग्वेद और अथर्ववेद के मन्त्रों में चार समुद्रों का उल्लेख मिलता है जिसे 'धन का भण्डार' कहा गया है। 'चतुः समुद्रम्' तथा 'समुद्रान चतुरः' से चार समुद्रों का स्पष्ट[14] उल्लेख है। इसका तादात्म्य हिन्द महासागर से किया जा सकता है।

समुद्र के लिए 'अर्णव' शब्द का भी उल्लेख किया गया ह। ऋग्वेद के 1.25.7 में समुद्र में चलने वाली नौकाओं का वर्णन है। जिनके मार्ग को वरुण देवता जानते हैं तथा ऋग्वेद के 1.47.6 व अथर्ववेद के 4.10.4–5 में समुद्र से प्राप्त होने वाले मोती और शंख का भी उल्लेख द्रष्टव्य है। ऋग्वेद के 1.169.3 में समुद्र के जल में घिरे द्वीपों का भी उल्लेख है। इन सब तथ्यों से कहा जा सकता है कि समुद्री मार्ग से अन्य देशों में व्यापार भी होता था।

3. नदियां –

ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक नदियों का वर्णन द्रष्टव्य है। कालान्तर में कुछ नदियां विलुप्त हो गयी है अथवा उनका नाम परिवर्तित हो गया है, परन्तु तत्कालीन सभ्यता में निम्न प्रमुख नदियों का उल्लेख मिलता है।

सप्त सिन्धवः – जहां ऋग्वेद के नदी सूक्त में सिंधु नदी का उल्लेख है।[15] वहीं अथर्ववेद[16] में कई मन्त्रों में सिन्धु शब्द सामान्य नदी का वाचक है। इन मन्त्रों में सिन्धु नदी की सराहना की गयी है। ये सात नदियां हिमालय से निकलकर सिन्धु में मिलती है।[17] इन सात नदियों में पांजब की पांच नदियां शतुद्री (सतजल), विपाशा (व्यास), इरावती (राप्ती), चन्द्रभागा (चेनाब) और वितस्ता (झेलम) ली जाती है। इसके अतिरिक्त दो नदियां सिन्धु और सरस्वतो को मिलाकर सात नदियां 'सप्त सिन्धु' कहलाती है।

सरस्वती – ऋग्वेद में सरस्वती नदी का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह पर्वत से निकलकर समुद्र में मिलती है।[18] इसी प्रकार अथर्ववेद में देवताओं द्वारा जौ की कृषि के प्रसङ्ग में भूमि की उर्वरा सरस्वती के किनारे अत्यन्त पायी जाती थी।[19] ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सरस्वती 'प्लक्ष प्रास्रवण' नामक स्थान से उत्पन्न होकर विनशन नामक स्थान पर लुप्त हुई है। विनशन कुरुक्षेत्र में वर्तमान में हरियाणा राज्य का सिरसा जिला नामक स्थान है। राजस्थान में भटनेर (हनुमानगढ़) के रेगिस्तान में विलुप्त होने वाली 'सरसुति' नदी से भी इसका तादात्म्य किया जा सकता है, जिसमें पटियाला के समीप घग्घर नदी आ मिलती है। तत्कालीन 'सरस्वती' नदी ही वर्तमान की घग्घर कही जाती है ऐसा भी तादात्म्य है। इसका दृषद्वती के नाम से भी ऋग्वेद के 3.23.4 में उल्लेख किया गया है।

गंगा इत्यादि – ऋग्वेद के नदी सूक्त में गंगा के साथ समुना, सरस्वती इत्यादि कई नदियों का उल्लेख है –

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।।[20]

सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियां –

ऋग्वेद के नदी सूक्त (10.75.6) में सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों का उल्लेख किया गया है –

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रु मुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे।।

इस मन्त्र में तृष्टामा (जासकार), सुसर्तु (सुरू), रसा (शेषक), श्वेती (गिलगिल), कुभा (काबुल), गोमती (गोमाल), क्रुमु (कुर्रम), मेहन्तु (सवान) इत्यादि नदियों का उल्लेख है।

इनके अलावा सुवास्तु (स्वात), सरयू (हरीयू), अंशुमती इत्यादि नदियों का नामोल्लेख भी ऋग्वेद व अथर्ववेद के कई मन्त्रों में किया गया है।

इस प्रकार वैदिक सभ्यता में जन निवास के आस–पास व कृषि, व्यापार उपयोग हेतु जिन प्राकृतिक संसाधनों का विभिन्न मन्त्रों में उल्लेख किया गया है। कुछ तो स्पष्ट है कुछ की अनुमान के आधार पर भौगोलिक स्थिति का तादात्म्य स्थापित किया गया है।

REFERENCES

1. ऋ.प्रा.व.दृ., सम्पा, मंगलदेव शास्त्री, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद। 1939, पृ. 5
2. अथर्ववेद – 19.27.3
3. अथर्ववेद – 11.7.18
4. षड् उर्वीः एकमिद् बृहत् – अथर्ववेद – 18.2.6
5. ऋ.वे. 10.121.4, अथर्व वेद – 4.9.9, 5.4.2, 6.24.1, तै. संहिता. 4.9.8, 4, 5.5.11.1, वाज. सं. – 24.30, काठ. सं. – 47.1. आदि।
6. कुष्ठी हिमवतस्योपरि। अथर्व. 19.39.1
7. शं. त आपो हैमवतीः। – अथर्व. 19.2.1
8. वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुत्। अथर्ववेद – 4.9.8
9. यदाज्जनां त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि – अथर्व. – 4.9.9
10. अथर्ववेद – 5.22.7.914
11. निरुक्त – 8.8
12. उभा समुद्रावा क्षेति यश्चपूर्व उतापरः। ऋ.वे. – 10.136.5
13. त्रीन समुद्रान्। अथर्व. – 19.27.4 पूर्वस्मादहंसि – उत्तरस्मिन् समुद्रे– अथर्ववेद– 11.2.25
14. चतुः समुद्रं धरुणं रयोणाम्। – ऋ.वेद. – 10.47.2, राय; समुद्रान चतुरः। – ऋ.वे.–7.33.6, चतुरः समुद्रान्. – अथर्व.वे. – 19.27.3
15. ऋग्वेद 1.97.8, 125.5, 2.11.9, 25.3.5
16. अथर्ववेद – 3.13.1, 4.24.2, 10.4.15
17. हिमवतः प्रसवन्ति, सिन्धौ समह संगमः। – अथर्व.वे. – 6.24.1
18. एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यति गिरिभ्य आ समुद्रात्। ऋ.वे. – 7.15.2
19. देवा इमं मुधना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधिमणाचर्कृषुः। अथर्ववेद– 6.30.1
20. ऋग्वेद 10.75.5